9

मातृभाषा के मायने

स्कूलों में मातृभाषा में शिक्षा की बातें तो बहुत हो रही हैं मगर क्या हमारे मातृभाषा की रट लगाने भर से ही बात बन जाएगी? बेशक, प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में होनी चाहिए। मगर मातृभाषा में शिक्षा को लेकर कई सारे सवाल और समस्याएँ हैं जिनके जवाब हमें ढूँढने हैं। मसलन, मातृभाषा में सामग्री निर्माण कैसे और कौन करे? और इससे भी बड़ा सवाल कि मातृभाषा किसे कहें? अगर एक कक्षा में अलग-अलग पृष्ठभूमि और मातृभाषाओं के बच्चे हों तो फिर उस कक्षा की मातृभाषा कौन-सी होगी? इस तरह के सवालों से आगे बढ़ने पर दूसरी तरह के सवालों से जूझना होगा। आखिर बच्चा मातृभाषा की ऊँगली कब तक पकड़कर चले? बच्चे को बाकी भाषाएँ सीखने का मौका कब और कैसे मिले? कोठारी कमीशन में त्रिभाषा फॉर्मूले की अनुशंसा की गई है। यानी मातृभाषा के अलावा अन्य दो भाषाएँ भी बच्चा सीखे। किन्तु ये भाषाएँ कौन-सी हों व इनको सिखाने का लक्ष्य व तरीका क्या हो इस पर गहरी अस्पष्टता व अन्तर्विरोध हैं। दूसरी बात यह है कि हालाँकि नीति यह मानती है कि बच्चे एक से ज़्यादा भाषाएँ सीख सकते हैं, किन्तु इसके लिए प्रक्रिया क्या हो और इनके आपसी परस्परव्याप्तीकरण व दखलअन्दाज़ी को कैसे सन्तुलित करें व इसमें शुद्धता की कितनी भूमिका व महत्व हो। यह लेख इन तमाम चिन्ताओं को उभारने की कोशिश करता है।

भाषा और संस्कृति सभी मनुष्यों में गहराई और अन्तरंगता से निहित अवधारणाएँ हैं। इनका सीधा सम्बन्ध स्वयं की छवि और आत्मसम्मान के साथ-साथ उस परिवार और समुदाय के प्रति सम्मान से है जिसका सम्बन्धित व्यक्ति हिस्सा होता है। यह सही है कि अँग्रेज़ी की तुलना में हिन्दी हमारी दुनिया के अधिक निकट है, किन्तु यदि हम मातृभाषा की बात करते हैं तो मुद्दा कुछ कठिन हो जाता है। एक पंजाबी अथवा गुजराती व्यक्ति जब हिन्दी बोलता है तो उसकी भाषा को बोली का दर्जा दे दिया जाता है और उच्चारण को विनोद की वस्तु

बना दिया जाता है क्योंकि भाषा सीखने सम्बन्धी आवश्यक आधार बिन्दुओं को बिलकुल भी स्वीकार नहीं करके हम उच्चारण व वैसी ही शुद्धता से जुड़ी अपेक्षाकृत गैर-ज़रूरी बातों को विशेष महत्व देते हैं। शुद्धता का प्रभुत्व बच्चे के भाषा विकास को अपने दमघोंटू प्रभाव से दबाए रखता है। भाषा का मुद्दा राजनैतिक कारणों से और भी जटिल बन गया है। हिन्दी अथवा अँग्रेज़ी को अति प्रभुत्व-सम्पन्न भाषा मानना ऐसी ही प्रक्रियाओं का परिणाम है। एक भाषा का उपहास करना और दूसरी भाषा पर ज़ोर डालना भी उन सभी के आत्मसम्मान पर कुठाराघात है जो राजनैतिक और सामाजिक शक्ति का प्रतीक समझी जाने वाली भाषा को नहीं जानते।

मातृभाषा में शिक्षा का सार्थक अभिप्राय

हम चर्चा इसी सवाल से शुरू करते हैं कि मातृभाषा का अर्थ क्या है और शुरुआती शिक्षा में और व्यक्ति के लिए अपनी भाषा का क्या अर्थ हो सकता है। इस चर्चा में सोचना यह है कि किसी भी इन्सान की सोच, व्यक्तित्व, कार्य पद्धति और जीवन दर्शन का उसकी अन्तरंग भाषा से क्या रिश्ता हो सकता है? शिक्षा में मातृभाषा का इस्तेमाल करने के क्या अर्थ हो सकते हैं और इसमें क्या सम्भावनाएँ हैं और क्या रुकावटें हैं? बच्चे के करीब की भाषा या उसकी मातृभाषा किसे मानें इसके लिए अलग-अलग अर्थ लगाए जा सकते हैं। एक तो यह हो सकता है कि जो माँ की ज़ुबान है, जिस भाषा में माँ बातचीत करती है वो मातृभाषा है। अगर हम यह बात मान लें तो यह समझना पड़ेगा कि इस बात के निहितार्थ क्या हैं? एक परिवार जो मूलत: तमिल है और दिल्ली में आ बसा है, उसके बच्चे के लिए सहज भाषा तमिल हो सकती है या दिल्ली में बोली जाने वाली भाषा हो सकती है। इसलिए किसी बच्चे के सन्दर्भ में उसकी मातृभाषा को पहचानने का प्रश्न बहुत सरल नहीं है। बच्चे के लिए कौन-सी भाषाओं को मातृभाषा मानें, यह एक मुश्किल मसला है।

भारत में विविधता है, हर तरह की विविधता। समुदाय के स्तर पर, भाषा के स्तर पर, रहन-सहन के ढंग के स्तर पर विविधता है और हर ढंग की अपनी एक शब्दावली है, बातचीत की अपनी एक कार्यप्रणाली है। अगर हम वास्तव में बच्चे की मातृभाषा की बात करें तो हर बच्चा एक से अधिक भाषाओं में निपुण होगा। यह मानते हुए कि हर बच्चा बहुभाषी है, जो भाषाएँ वह जानता है उसमें से कौन-सी उसके लिए सबसे सहज व सार्थक होगी हमें इस बात को भी परिभाषित करना होगा। साथ ही, यह भी सोचना होगा कि क्या हम इसे ही मातृभाषा मान रहे हैं। और यह भी कि शिक्षा के सन्दर्भ में किसको मातृभाषा मानें? अगर हम इस पर विचार नहीं करेंगे तो भाषाई विविधता के बावजूद गुजरात में मातृभाषा गुजराती, तमिलनाडु में तमिल, आन्ध्र प्रदेश में तेलुगु हो जाएगी। चाहे उस प्रदेश के कर्नाटक से जुड़े हिस्से के बच्चे कन्नड़ के करीब की कोई भाषा बोलते हों। अगर हम राजस्थान की बात करें तो वहाँ पर शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। इस राज्य में कुछ ऐसी भाषाएँ हैं जिनको हिन्दी के करीब कह सकते हैं। लेकिन कुछ भाषाएँ हिन्दी के करीब नहीं है। तो यह सवाल उठता है कि इन भाषाओं को बोलने वाले बच्चों को मातृभाषा में शिक्षा मिलनी चाहिए या नहीं। यह प्रश्न इसलिए ज़रूरी है क्योंकि मातृभाषा के बारे में जब हम विचार करते हैं तो इस प्रश्न के ऊपर हमारी

अवधारणात्मक स्पष्टता होनी ही चाहिए कि हम मातृभाषा किसे मान रहे हैं। यह देखना होगा कि शिक्षा के दर्शन में मातृभाषा में पढ़ाने के विचार के पीछे क्या समझ है। इस समझ का एक पहलू यह भी है कि बच्चा अपने समाज व अपनी संस्कृति का सदस्य बना रहे। इस पर आगे के हिस्से में कुछ और बात करेंगे।

गाँधी द्वारा प्रस्तावित बुनियादी तालीम के विचार में भी मातृभाषा में शिक्षा को बहुत महत्व दिया गया था और इसके पीछे यह दर्शन था कि मातृभाषा में शिक्षा बच्चे को अपने समाज से जोड़े न कि उससे विमुख करे; कि बच्चा अपने समाज में कुछ उत्पादक कार्य भी साथ-साथ करे। स्कूल और बच्चे मिलकर समाज में कुछ उत्पादक कार्य करें इसके लिए शिक्षा की भाषा महत्वपूर्ण हो जाती है। बच्चे को जिस भाषा में शिक्षा मिल रही है वो ऐसी होनी चाहिए जिससे वह अपने समुदाय में जो हो रहा है उसके बारे में समुदाय के साथ संवाद कर सके। उस समुदाय के साथ जहाँ उसे बिक्री करनी है, जहाँ पर उसको किसी कारीगर से बात करनी है, वो बातचीत कर पाए। यानी, मातृभाषा की जो आवश्यकता है उसको अगर आधार मानकर चलें तो ऐसा प्रतीत होता है कि मातृभाषा से आशय उस भाषा से है जो बच्चे के आसपास उपयोग हो रही है और जिस भाषा में बच्चा बड़ा हो रहा है। इसी भाषा में व वहाँ के भाषा समूह के पुंज में ही उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक व अवधारणात्मक विरासत रची जाती है।

इस चर्चा में यह प्रश्न पुनः बहुत महत्वपूर्ण है कि आखिर भाषा का इन्सान के साथ रिश्ता क्या है? इन्सान मूलत: एक प्राणी है। लेकिन वह अन्य प्राणियों से बहुत फर्क है। बाकी प्राणियों एवं इन्सान में जो सबसे बड़ा फर्क है वो भाषा का है। इन्सान ने अपने विकास में अपने साथ-साथ अपने भाषाई ढाँचे का और असंख्य भाषाओं का भी विकास किया है। इस पूरे विकासक्रम से इन्सानी समाज की रचना व पुनर्रचना गहरे जुड़ी हुई है। वैचारिक ढाँचे की रचना, ज्ञान का हस्तान्तरण व उसमें नए ज्ञान का जुड़ना भाषा पर ही निर्भर है और यह भाषा का विकास भी करता है। और यदि हम भाषा के बारे में गहराई से सोचें तो यह यानी भाषा सिर्फ सम्प्रेषण का मसला नहीं है, क्योंकि वह तो तात्कालिक होता है। "ये पहाड़ हैं", "ये दरवाज़ा है", "मुझे पानी चाहिए", "क्या आपको पेन्सिल चाहिए", "पंखा चला दें", "बन्द कर दें" - ये कुछ नाम है और कुछ काम है। और इसमें बहुत कुछ तो इशारे से भी किया जा सकता है और शायद वहीं से भाषा की शुरुआत हुई होगी। किन्तु पंखे की अवधारणा के विकास में और पंखे को बनाने के लिए जो ज्ञान चाहिए वह ज्ञान एक पीढ़ी में हासिल नहीं किया जा सकता। यानी कोई भी वस्तु है उसके नाम के साथ काम जोड़ने से उसे पहचानने में मदद मिलेगी। उसे अपना काम करता देखकर यह कह सकते हैं कि यह वस्तु इसके अलावा किस काम के लिए उपयोगी हो सकती है। किन्तु देखकर यह नहीं पता चल सकता कि यह क्यों बनी, किस तरह बनी और इसके बनने में कौन-कौन सी अवधारणाएँ व सिद्धान्त शामिल थे। और अगर आज इस यंत्र (मिसाल के लिए, पंखा) को बनाना है तो उसके लिए किस तरह का ज्ञान चाहिए और उसको बना पाने की तैयारी के लिए आवश्यक ज्ञान व कौशल कैसे हासिल होंगे। ज़ाहिर है यह सब व्यवस्थित रूप से संचित व तात्कालिक तौर पर उपलब्ध एक विकसित सांकेतिक माध्यम, यथा भाषाई विमर्श के सहयोग से रचित अन्तः क्रिया से ही मिल सकता है और इस सबके लिए भाषा का होना नितान्त आवश्यक है। कुल मिला कर ज्ञान को बाँटने का और एक

पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ले जाने का माध्यम भी भाषा है। पूरे ज्ञान को संरचित करने का माध्यम भाषा है। आपस में जब हम झगड़ा करते हैं, प्यार करते हैं, उसमें भी महसूस करने वाला संवाद भाषा है। इसके अलावा जितने भी संवाद हम कर पाते हैं, सब भाषा में हैं।

मातृभाषा माध्यम के सवाल से अधिक

भाषा हमारे जीवन का, हमारे इन्सान होने का आधार है। हमारा पूरा अस्तित्व और अस्मिता भाषा से बनी है। अपनी संस्कृति से हमने जो तौर-तरीके सीखे हैं, जिस तरह हम व्यवहार करते हैं वो सारी संस्कृति हमने व्यवहार और भाषा के माध्यम से ही सीखी है। हमारी भाषा, जिस संस्कृति से हम हैं, उस पूरी संस्कृति का वाहक भी हैं और मानक भी। उदाहरण के लिए, आप कहीं भी चले जाएँ, किसी भी देश में चले जाएँ, आपकी भाषा, आपकी ज़ुबान बोलने वाला अगर कोई व्यक्ति मिल जाए तो उसके साथ जिस लहज़े में व जितनी सहजता व निजता से आप अन्तरंग बातचीत कर सकते हैं उतनी सहजता से किसी और भाषा बोलने वाले से नहीं कर सकते। उसमें कुछ विशेष पहलू तो ज़रूर छूट जाएँगे। हालाँकि यह अन्तरंग बातचीत अपनी भाषा बोलने वाले हर व्यक्ति से नहीं हो सकती फिर भी जिनसे हो सकती है उनमें भाषा व उसके लहज़े की करीबी गहराई बढ़ा देती है। इसलिए हमारी ज़ुबान हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण है। बचपन के दोस्तों के साथ जो बातचीत आप कर सकते हैं वैसी बातचीत उनसे नहीं कर सकते जिनसे बड़ी उम्र में दोस्ती हुई है। जब बचपन के दोस्त मिलते हैं तो उसी भाषा व शैली में बातचीत करने में जो मज़ा आता है वह किसी ज्ञानी व्यक्ति के साथ या अभी के दोस्तों के साथ नहीं आता। हमारे लिए मातृभाषा का महत्व और शिक्षा का उसके साथ सम्बन्ध सिर्फ हिन्दी, अँग्रेज़ी, तमिल, गुजराती माध्यमों का प्रश्न नहीं उससे भी बड़ा प्रश्न है। अगर हम इस सवाल को समझेंगे तभी हम सही मायने में रास्ता ढूँढ पाएँगे। अगर हम इसको माध्यम का एक सीमित प्रश्न बना देंगे तो हम उस पूरे विचार के साथ अन्याय करेंगे जो मातृभाषा के साथ जुड़ा है।

इस समझ का स्कूल की भाषा से भी सम्बन्ध है। यदि स्कूल की भाषा में उपयोग किए जा रहे शब्द हमारे ज़हन में बसी भाषा से मेल खाते हैं तो हमें वह मसौदा समझने में आसानी होगी। अगर अर्थशास्त्र की अवधारणाएँ बच्चों के अनुभव में शामिल मसलों से उभरेंगी तो उनके लिए उनका बुनियादी तत्व समझना सम्भव हो सकेगा। इसी तरह, अन्य विषय व अन्य अवधारणाएँ भी शब्दों के साथ गुँथकर ज़्यादा आसानी से हमारी अपनी बन सकती हैं। अगर भिन्नात्मक संख्याओं की बुनियाद ऐसे अनुभवों पर खड़ी है, जो स्वाभाविक है और जिसमें पाव, आधा, पौन, डेढ़, ढाई आदि जैसी धारणाएँ शामिल हैं तो उनका व्यापक अर्थ समझना सम्भव हो सकता है। भाषा का महत्व कार्य व अध्ययन के जुड़ाव से भी है।

भाषा व अवधारणा निर्माण

शिक्षा मूलत: संवाद के माध्यम से आगे बढ़ती है। और इन्सानी विचार, सोच का ढाँचा, क्षमता व विकास संवाद से ही आगे बढ़ता है। यह संवाद लोगों से हो सकता है, साहित्य से हो सकता है, पुस्तकालय से हो सकता है या प्रकृति से या अपने आप से हो सकता है। इन

सबके लिए भाषा एक बहुत महत्वपूर्ण माध्यम है। मान लीजिए आपको यह कल्पना करनी है कि अगले दो महीनों में आप क्या करने वाले हैं। अगर आपके पास भाषा नहीं होती तो क्या आप यह कल्पना कर पाते और उसे दूसरों को बता पाते? आप यह भाषा के कारण ही कर पाते हैं। आप एक-दूसरे की बात समझ पाते हैं, आप पंखे को कुर्सी से अलग कर पाते हैं और असंख्य कुर्सियों को पहचान पाते हैं। यह सब आपके पास इसलिए है क्योंकि आप उस विशेष गुण को, जो कुर्सी होने के लिए आवश्यक है, भाषा में व्यक्त कर सकते हैं। आप उस सब को पूरी तरह से व्यक्त भी नहीं कर सकते जो आपके पास भाषा के आधार में नहीं है। कुछ चित्र बनाकर, कुछ गुण बताकर आप जो समझा पाते हैं उसका आधार भी भाषा ही है। चूँकि साथ काम करने के लिए नए-नए अनुभव व नई परिस्थितियों के सन्दर्भ में अपने मत रखने होते हैं, अतः भाषा के नए-नए प्रयोग व शब्दों का अनेक सन्दर्भों में परिचय हो जाता है। यह उन अवधारणाओं की गहरी व अन्य बातों के सन्दर्भ में जुड़ी समझ दे पाता है।

शिक्षा में ज्ञान का निर्माण, संकलन, विमर्श और परिमार्जन किसी भी भाषा में हो सकता है। भारत के सन्दर्भ में देखें तो वह अँग्रेज़ी, हिन्दी या कोई भी अन्य भाषा हो सकती है। हर भाषा समृद्ध होने की क्षमता रखती है। बशर्ते कि विमर्श उस भाषा में हो। जिस भाषा में जितना ज़्यादा संवाद व विमर्श होगा, वह भाषा उतनी ही समृद्ध बनेगी।

भाषा के सन्दर्भ में एक और महत्वपूर्ण बात है इन्सानों द्वारा उसका प्रयोग कर पाना। जो भाषा अपने आपको बदलने की इजाज़त लोगों को देती है, जो नए विचारों, शब्दों और लोगों को अपने दायरे में शामिल करती है वह ज़्यादा ताकतवर हो जाती है। जो भाषा बन्द हो जाती है, वह मर जाती है। चाहे वह भाषा जितनी भी तथाकथित रूप में वैज्ञानिक कही जाती हो। इस मान्यता के पीछे धारणा यह है कि कुछ भाषाएँ ज़्यादा व्यवस्थित हैं और उसमें ध्वनि, अर्थ, काल, लिंग, प्रश्नवाचकता, समास, सन्धि, आदि के नियम ज़्यादा व्यवस्थित हैं। इसमें एक और मान्यता गठित है और वह यह कि वैज्ञानिक भाषाएँ चिरकाल से हैं व इनका भाषा विज्ञान सुदृढ़ है। ये स्थिर हैं क्योंकि वैज्ञानिक तौर पर परिक्षित हैं। पर वास्तव में इस कथन की बुनियादी मान्यताएँ ही त्रुटिपूर्ण हैं। संसार की हर भाषा वैज्ञानिक है और हर भाषा का भाषा विज्ञान लिखा जा सकता है। भाषा के व्यवस्थित व 'वैज्ञानिक' हुए बिना उसमें संवाद ही सम्भव नहीं है। फिर भी अक्सर कहा जाता है कि कुछ भाषाएँ यथा, संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि अधिक वैज्ञानिक हैं। चूँकि ये भाषाएँ स्थिर हैं और बदलती नहीं है, इसीलिए ये वैज्ञानिक हैं। किन्तु यह सोचना होगा कि आखिर ये स्थिर क्यों हैं? ये बदल क्यों नहीं रही हैं? क्या इनका उपयोग नहीं होने के कारण ये स्थिर हैं या स्थिर होने के आग्रह के कारण इनका उपयोग नहीं हो पाता। क्योंकि इनकी वैज्ञानिकता का आग्रह करने वाले लोग इनमें लचीलेपन की गुंजाइश नहीं छोड़ते और वे लोग इन भाषाओं को न तो बदलने देना चाहते हैं और न ही इनमें कोई गलती स्वीकार करते हैं। इस प्रकार वे इनके बोलने को ओहदे का मसला भी मानते हैं और समाज के विशिष्ट हिस्से का भाग होने का भी। इसका कुल निहितार्थ यह है कि वे इन्हें इन्सानी भाषाओं के रूप में जीने ही नहीं देना चाहते। जीने का मतलब है बदलाव, अगर भाषा को ज़्यादा लोगों तक जाना है तो उसे लचीला होना पड़ेगा और परिवर्तनशील भी। जीवन्तता और फैलाव की राह में भाषा की शुद्धता बहुत बड़ा रोड़ा है। भाषा के विकास

व समृद्धि के सन्दर्भ में एक बड़ा प्रश्न यह है कि उसको कितने लोग इस्तेमाल कर पाते हैं। यह मसला पूरी शिक्षा से और विशेष तौर पर भाषा की शिक्षा से जुड़ा है।

हमारी कक्षाएँ बच्चों की कितने प्रकार की भाषाएँ अपने में समाहित कर पाती हैं, यह भी कक्षा की अवधारणात्मक समृद्धि का प्रतीक है। इसीलिए यह आवश्यक है कि कक्षा में हर भाषा के लिए और हर बच्चे के अनुभव के लिए जगह हो। उनकी बातों को सुना जाए और ज़्यादा अभिव्यक्त करने के मौके दिए जाएँ। ऐसी चुनौतियाँ मिलें जिसमें उन्हें स्वाभाविक रूप से सोचकर अपने विचारों का व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण करना पड़े।

हमारे देश में प्राथमिक शालाओं में पढ़ने वाले बच्चों का एक बड़ा तबका ऐसा है जिनके घर पर बातचीत के विषय काफी सीमित हो सकते हैं। इन घरों के वयस्कों के पास बातचीत के लिए ज़्यादा समय वैसे भी नहीं है। इससे बड़ी समस्या उनकी और स्कूल की भाषा में अन्तर का है। जो भाषा वे जानते हैं वे सिर्फ घर पर बहुत छोटे क्षेत्र में इस्तेमाल करते हैं, उसकी जगह स्कूल में नहीं है। कई बच्चे जिनको अपने माता-पिता के साथ कई सौ किलोमीटर का पलायन करना पड़ता है और उनके कार्य स्थल पर जाना पड़ता है, उनके लिए सम्पर्क भाषा को समझना भी सरल नहीं है। हमारे लिए यह अनिवार्य है कि स्कूलों में बच्चों की मातृभाषा की जगह हो, नहीं तो स्कूल के साथ उनका संवाद ही नहीं बन सकेगा। कई ऐसी जगह हैं जहाँ कक्षाओं में दो-तीन भाषाएँ बोलने वाले बच्चे हैं और इन भाषाओं में से आधी भाषाएँ वहाँ नियुक्त शिक्षक भी नहीं जानते। ऐसे में कक्षा में संवाद निर्मित करने का काम चुनौती भरा है।

संक्षेप में

हमारे देश में बहुत-सी भाषाएँ हैं। हर राज्य में कई भाषाएँ हैं। इन विभिन्न भाषाओं को जानने वाले सभी बच्चों को स्कूल में अपनापन कैसे लगे? दूसरा सवाल यह कि किसी भी विषय में विमर्श व अध्ययन की सामग्री कितनी भाषाओं में उपलब्ध है? तीसरा यह भी कि जब हम इस सामग्री को अन्य भाषाओं में अनूदित करवाकर ज़्यादा लोगों तक पहुँचाना चाहें तो अनुवाद की भाषा कैसी हो?

जब तक सामग्री भारतीय भाषाओं के ग्राह्य रूप में उपलब्ध नहीं होगी तब तक यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि शिक्षा और उससे जुड़े पहलुओं पर विमर्श भारतीय भाषाओं में हो। यह महत्वपूर्ण है कि लोक सुलभ स्वरूप में अध्ययन व विवेचन सामग्री भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हो और उनमें भी नए ज्ञान की सोच, सृजन व उत्पत्ति हो। ज्ञान को आत्मसात् करने में ज़्यादा लोगों की भागीदारी होगी, तब उसमें ज़्यादा लोग कुछ हद तक जुड़े रहेंगे।

स्रोत

- हृदय कान्त दीवान, 2010, "मातृभाषा के मायने", *बुनियादी शिक्षा - एक नई कोशिश,* सयुंक्त अंक 26-27, फरवरी – जुलाई 2010, 1-5, विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर।